०१. झूठी मिट्टी

०२. मर्ज़ को ढूँढ़नेवाले

०३. घेरा रचकों की नादानी/मूर्खता

०४. विलोपन के खेल

०५. शुरुआतों की लड़ाई

पूर्वज

१८ डिग्री, ३५ मिनट और २० सैकंड-उत्तर; ७४ डिग्री, ३२ मिनट और २९ सैकंड-पूर्व पर स्थित

घोड नदी भीमा नदी की एक मुख्य उपनदी है और इसके तट पर पुरस्कारों का गाँव, यानी इनामगाँव स्थित है। हडप्पा युग का यह आद्य ऐतिहासिक व्यापार केन्द्र आज एक खोखला खुदाई श्रेत्र है। इस श्रेत्र की डॉ. एम.के. धावलीकर और उनके पुरातत्त्वविद् दल ने सन १९६३ में खोज की। अवशेषों की जाँच से वे इनामगाँव के निवासी अपनी बिरादरी के शवों का अंतिम संस्कार किस तरह करते थे इसका अनुमान लगा सके।

खोदते-खोदते पुरातत्त्वज्ञों को २४३ मज़ारों का एक कब्रस्तान मिला। सभी शवों को एक खुले श्रेत्र में गाड़ा गया था और हर एक के इर्दगिर्द जबरज़द के मणियों की कढ़ाई से सजे औज़ार, आभूषण, कवच और हथियार रखे गये थे। हर शव को बड़ी नज़ाकत से कुतुबनुमा की सूई कि तरह उत्तर दिशा में लिटाया गया था। इन शवों के पाँव टखनों से काट दिये गये थे जो पुरातत्त्वज्ञों के मुताबिक एक विधि थी जिससे दिवंगतों की आत्माएँ भूतल से मुक्त होकर जा सकें।

एक विचित्र सा मज़ार इन सब कब्रों से बिल्कुल अलग था। उत्खनन श्रेत्र के मध्य भाग में एक बड़े स्थापत्य के अवशेषों के भीतर एक शव दफ़नाया गया था-यह बड़ा स्थापत्य बहुधा पूजास्थल या गढ़ था। शव एक ३५ साल के आस-पास के पुरुष का था जो एक महाकाय पकी मिट्टी के कूप में पालथी मारे बिठाया गया था। कूप क आकार एक स्थूलकाय चौपाये जानवर जैसा था। कूप के इर्दगिर्द अजीबोग़रीब उपकरण, बड़े रैतिक मुखौटे, आनुष्ठानिक खंजर/कटारें, सींगदार फ़लोंवाली तलवारें, कृषिक औज़ार, वैज्ञानिक साधन और मन्नत के लिये बने पुतलों से भरे पकी मिट्टी के कूप थे।

इस मत के पीछे था एक नाव नुमा निशान जो उस चौपायी कब्र पर खरोदा हुआ पाया गया था। इस कब्र का अन्वेष्क था धावलीकर के गुट का एक सदस्य जिसने अपने-आपको मूक शोधक का खिताब दे रखा था। इस खोज के बाद के दिनों में मूक शोधक ने कई गुप्त लेख छापे जिनमें यह दावा किया गया था कि वह नाव नुमा रूपांकन अंतर-आयामी पर्यटन में माननेवाली कई सभ्यताओं का प्रतीक था। शुरूआत में इन धारणाओं से पुरातत्त्वज्ञ बिरादरी के कई सदस्य सहमत हुए, पर सन १९७५ मं घोषित राष्ट्रिय आपातकालीन स्थिति के बाद के हफ़्तों में मूक शोधक की दलीलें भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा औपचारिक रूप से खारिज कर दी गईं।

इस 'अजनबी' परिकल्पना को द्वेषी और भड़काऊ प्रवृत्तिवालों द्वारा रचित पथांतरण ठहराया गया और यह भी कि यह परिकल्पना भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की स्थापित कार्यप्रणालियों से असंगत थी। विचित्र लक्षणोंवाली इन वस्तुओं का उद्भव या मूल स्त्रोत निश्चित रूप से सिद्ध किया नहीं जा सकता। क्या ये इनामगाँव से पहले के काल की किसी लुप्त सभ्यता की कृतियाँ हैं? क्या ये मूक शोधक के मतानुसार अंतर-आयामी पर्यटन के उपकरण हैं जो समय और अंतरिक्ष की सीमाएँ लाँघकर लाखों इतिहासों का बोझ उठाए भटक रहे हैं?

इन सब प्रश्नों का भले ही जवाब न हो, एक बात तो निश्चित है: अभी वे यहाँ हैं।

०१. झूठी मिट्टी

हद हद करते सब गए और बेहद गयो न कोय

अनहद के मैदान में रहा कबीरा सोय

पुरातत्त्वज्ञों के घुटने जब धूल से पूरी तरह पुत जाते हैं तब उनकी समझ में आने लगता है कि भूगर्भविद्या में हमारे मानस को अस्तव्यस्त करने की/भरमाने की शक्ति है। इस अद्भूत वाकये को वे 'हद से परे'/ 'दायरे के बाहर' कहते हैं। अपने ऐतिहासिक काल की मिट्टी से मेल न जमे ऐसे प्राचीन उपकरणों को इस वाक्यप्रयोग से पहचाना जाता है, क्योंकि मुमकिन है कि ये ऐसे काल के हों जो उन पर पुती मिट्टी का का काल न हो।

ऐतिहासिक समय के अनुसार वर्गीकरण होने से पहले यह पृथ्वी और उस पर जो कुछ है वह सब छ्ल के भँवरजाल में उलझा हुआ है।

इनामगाँव की अवभूमि भी इसी तरह है। यहाँ जो कुछ है वह जहाँ होना चाहिये था वहाँ से नहीं आया मेरे दोस्त।

०२. मर्ज़ को ढूँढ़नेवाले

इस बीमारी के रहस्यमय स्रोत के बारे में बहुत वादानुवाद थे। खुद बीमारी और उसकी शुरुआत के बारे में इतने मतभेद थे कि कई मत संप्रदाय और मतभेदी दल उभरे। रोगमुक्ति और उपचार के लिए हर एक की अपनी-अपनी विशिष्ट प्रणालियाँ थीं।

१ 'रजतभक्षी' एक ऐसी खानाबदोश जनजाति थी जो चंद्रपूजक थी। उनका मानना था कि रात्रि की मरीचिका में इस जानलेवा बीमारी को चकमा दिया जा सकता है। जब सुबह होती थी तो वे हाट-मंड़ियों में जाकर अतीत की परछाईंयों से बँटोरी चाँदी की चीज़ों से बनी गुटिकाएँ बचते थे।

२ 'शवलेपकों' का मानना था कि मवेशियों की लिजलिजी चरबी पूरे बदन पर लेपने से इस रोग से रक्षा हो सकती है। यह जनजाति भी निशाचर थी और जब इस जाति के लोग रात को किसानों के घरों और खेत-खलिहानों पर डाका डालते तो चरबी से पुते उनके बदन सितारों की रोशनी में चमचमाते।

३ इस जनजाति को बोलचाल की भाषामें 'निशान-लगे' कहा जा सकता है। इस संप्रदाय के लोगों ने अवनवा रोग-प्रतिरोधक टीका खोज निकाला था। उनका मानना था कि समुद्रफेनी की सियाही में रोग प्रतिरोधक बहिर्द्रव्य होता है। अत: वे अपने शरीर पर इस सियाही से गोंदने बनाते। रात भर जागकर वे पूरी जमात के शरीर इस तरह गोंदते कि हर शरीर एक प्राचीन पशुकथा सरीखा दिखने लगता।

४ 'अवरोधन' पंथियों का मानना था कि यह मर्ज़ रोगियों के दिमाग़ के अंदरूनी भागों पर असर करता है और पूरे शरीर पर इस कदर कब्ज़ा कर लेता है कि वह रोगी से अपनी अथाह मनोकामनाएँ और सनकें पूरी करवा सके। इससे रक्षण पाने के लिए शरीर के जिस-जिस भाग पर सूर्यकिरणें पहुँच सके उसे वे ढँक लेते-खासकर आँखें-और अँधे फकीर बने भूली-बिसरी बोलियों में स्तुति-स्तोत्र फुसफुसाते रहते।

०३. घेरा रचकों की नादानी/मूर्खता

२०वीं सदी का सूर्योदय हो रहा था जब आधुनिक छवि चित्रण के पितामह पॉल सेज़ान ने ऐलान किया कि गोचर विश्व के विस्तार को, उसकी संपूर्णता को, घनों के उपयोग से चित्र-रचना के घेरे में आयोजित किया जा सकता है। आपका कहना था, "हमें वस्तुस्थिति देखकर खुश नहीं होना है; हमें वास्तविकता की संरचना करके, उसका पुन:संयोजन करके, नये क्रम में तय करना है और हमारी रचना के नियमोंनुसार उसका रूप बदलना है।"

वास्तविकता का वर्गीकरण करके उसे समझने के लिए अपनायी गयी इस आक्रमकता ने आधुनिक चित्रकला के बड़े-बड़े सूरमाओं को झुंझलाया है। पर 'क़ाबू में रखनेवाला घन' मानवजाति का सबसे चिरस्थायी और सभ्यतागत मूलभाव साबित हुआ है। घनाकार ने समुंदर की सीमाओं तक, सितारों की हद, तक इंसानों का पीछा किया है। अर्थात, मनुष्य जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ उसने घन बनाए हैं।

पथ्थर से बने बाड़ों से लेकर इंटों, लोखंड के पिंजरों, पुट्ठे के खोकों, सरहदी दिवारों और संगरोधन घेरों तक मानवजाति ने अपने-आपको घनों के अंदर रखने की अनुकरणीय क्षमता दिखाई है। जिसका वर्गीकरण न हो सके, या जिसे विभिन्न गुटों में बाँटा न जा सके, उसका बहिष्कार करके उसे बाहर निकालकर मानवजाति ने यह काम किया है। अर्थात जो कुछ सीमाबद्ध न हो सके/दायरों में बंद न हो सके उसे महज अफ़वाहें ठहराया गया है।

पर डरो मत मेरे दोस्त, जैसा कि हम जानते हैं, अफ़वाहें फैलने लगीं हैं।

०४. विलोपन के खेल

इनामगाँव के विलोपन के बारेमें इजाद हुए कई तर्कों/परिकल्पनाओं में एक खास तौर से अग्रण्य है - पूरे उपमहाद्विप के पुरातत्त्वज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि यह सभ्यता भीमा वादी का विनाश करनेवाली बाढ़ की वजह से लुप्त हुई।

भीमा नदी में बार-बार आने की प्रवृत्ति और भूवैज्ञानिक सबूतों को ध्यान में रखा जाये तो यह अभिधारणा माने रखती है; पर इनामगाँव में मिले शव कुछ और ही कहानी बताते हैं, क्योंकि उनमें पानी में डूब मरने के कोई भी निशान नहीं दिखाई देते। इस उत्खनन क्षेत्र में मिले औज़ारों, आभूषणों, बर्तनों, खिलौनों और अन्य कृतियों का प्रचूर संग्रह नदी के अनेकों ज्वार-भाटों से गुज़र कर भी अपनी जगह पर टिका रहा है और बाढ़ से हुए विलोपन के दावे का खंडन करता है।

पर यह बात भी सच है कि कुछ तो पानी की लहरों में फँसकर लुप्त हुआ है, क्योंकि यहाँ के अवशेषों में एक भी घडी, समयावली, धूपघडी या काल-दर्शक नहीं मिले। ये सभी उपकरण इनामगाँव सभ्यता के पहले और पश्चात अस्तित्त्व में रह चुके हैं। शायद समय ही नदी के अध:प्रवाह में बह गया है।

समय नापने का किसी भी तरह का उपकरण न होना यह बताता है कि इनामगाँव के निवासी समय को कैसे समझते थे इसके बारे में पूर्णत: ग़लत अनुमान लगाये गये हैं। शायद उनके लिये समय कोई वस्तु नहीं थी जिसे पकड़कर नापा जा सके, बल्कि समय एक प्रवाह था जिसका गुणधर्म था बीतना।

इनामगाँव के निवासी कई खेल खेलते थे- स्पर्धा के खेल जो उनका व्यक्तित्त्व घड़े और चरित्र विकसित करें; मौके के खेल जो उनकी दुनिया में हयात कई ताज्जुबों की ओर ध्यान खींचे; नक़ल के खेल जहाँ दोहराना और परस्पर नाते समझना ये दोनों उद्देश्य रहते थे और अंत में बवंडर के खेल जो उस मक़ाम पर खेले जाते थे जिसे आधुनिक मानस तर्कशक्ति की सरहदों के पार मानता है। भले आज हमें ये समय के कीचड़ में लथपथ प्रतीत हों, इनामगाँव के पूर्वज ऐसी सरहदों के दायरों में बंद न थे और खुशी-खुशी अपने-आपको धूल के हाथ सौंप देते थे।

०५. शुरुआतों की लड़ाई

मृतों की दफ़नविधि महज़ इहलोक से मरणोपंरात जीवन के बीच के गलियारे में रखे गए एक कदम के बराबर है, पूरी कार्यविधि का सिर्फ़ एक हिस्सा। इस गलियारे से गुज़रते हुए मनुष्यजाति ने बहुत कुछ प्रकट किया है- साम्राज्य, गदर, तंत्रज्ञान, चोरी, अभिनय, राजनैतिक अभियान, महामारी, नश्तर, कशिश, आस्था, अपधर्म। इन तरीकों का पच्चीकाम जब जुड़ा रहता है तब उसका वज़न मानव संस्कृति के पूरे वज़न के बराबर होता है।

इस वज़न का मूल दो विरोधी मिथकों के पौराणिक युग्मक में अन्तर्हित है। कहा जाता है कि पहला रुसो के विचारों पर आधारित है और बताता है कि मनुष्यजाति का प्रारंभ इश्वर की कृपा खो देने की वजह से हुआ।

इस मिथक के मुताबिक शुरुआत में हम छोटी टोलियों या कबीलों में रहते थे और दस-बीस लोगों समेत कल्पनालोक जैसे भूस्वर्ग में फल-फूल रहे थे।

तथापि, सांस्कृतिक जटिलता बढ़ी तो संप्रदाय, स्वरूप, राज्य़ और समाज के रूप में उसका विस्तार भी बढ़ा; अपने जन्मजात स्वभाव से हमारा नाता अलग हो गया और दफ़्तरशाही के सोंटे खाकर भाईचारे का अहसास टूट गया।

दूसरे मिथक के लिए थॉमस हॉब्ज़ के लेवियाथन को जिम्मेदार ठहराया जाता है। इस मिथक के मुताबिक मनुष्यजाति जन्मजात जंगली है।

यह मिथक हमें बताता है कि हम इन्सान खुदगर्ज़ हैं और पूरा वक़्त सब चीज़ें बँटोरते रहते हैं। हम खानाबदोश, जानवरनुमा, उज्जड और जागिरदारी मिजाज़ के हैं और अपनी ही जाति से हरदम लड़ते रहते हैं।

इस मिथक का दावा है कि अगर इस मनहूस हाल से हमें कुछ राहत मिली है तो वह सभ्यता की अलग-अलग व्यवस्थाओं के स्थापन की वजह से है- वही व्यवस्थाएँ जिनसे इस मिथक को इतनी शिकायत है। वैसे देखा जाए तो हमारे जन्मजात बर्बर स्वभाव से लड़ने के की कोशिशों की वजह से तो सभ्यता की शुरुआत को बढ़ावा मिला।

हमारी शुरुआत के बारे में हो रहे इस द्वंदवादी मल्लयुद्ध में हम अपने-आप को एक ऐसी ज्ञानमीमांसीय

बंदगल्ली में भटके पाते हैं जो समय से भी पुरानी है।

लेकिन हमारी शुरुआत के बारे में बतानेवाले दोनों दावेदार महज़ रंजित कल्पन हैं जो अटलता से बंद अतीत को विकृत कर रहें हैं। मिट्टी के बर्तनों के ठीकरे, हथियारों के टूटे फ़ल, सिल बट्टे, जहाज़ घाट, स्मारक समाधियाँ, और जो कुछ समय की मृदा से उभरता है, सब का सब इस प्राचीन लड़ाई में ज़बरदस्ती भरती किया जाता है।

परंतु समय की पहेलियों के खालीपन की दरारों में से मानववैज्ञानिका मार्गरेट मीड ने एक और दावेदार ढूँढा, एक हड्डी के रूप में। मनुष्य के शरीर की सब से लंबी हड्डी-कुल्हे और घुटने को जोड़नेवाली एक जाँघ की हड्डी। यह हड्डी १५००० साल पहले टूटी थी।

पुरापाषाण युग में जब यह हड्डी टूटी होगी तो बिना आधुनिक वैद्यकीय इलाज के उसे नैसर्गिक रूप से जुड़ने में ६ हफ़्ते का वक़्त लगा होगा। इस दौरान आप खतरे से दूर भाग नहीं सकते, आप पानी या अन्न जुटा नहीं सकते। इस हाल में आप बेशक दरिंदों के शिकार होनेवाले हैं। पर यह टूटी हड्डी तो जुड़ी थी।

यह हड्डी सबूत है कि टूटी हड्डी वाले बंदे के ज़ख्म की मरहमपट्टी कर के उसे सुरक्षित जगह ले जाकर वह अपने पैरों पर खड़ा हो तब तक उसकी देख-भाल करनेवाला कोई था। जाँघ की यह प्राचीन हड्डी हमें याद दिलाती है कि हमारी संस्कृति का प्रारंभ गिरने की वजह से नहीं बल्कि फिर से उठ खड़े होने की हमारी काबिलीयत की बदौलत है।